श्रीराम नारायण मेधी

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

(Sriram Narayan Medhi

Vs.

The State of Maharashtra)

(4 मई, 1971)

(मुख्य न्यायाधिपति एस० एम० सीकरी, न्या० जी० के० मित्तर, सी० ए० वैद्यलिंगम्, ए० एन० रे और पी० जगनमोहन रेड्डी)

बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकलचरल लैण्ड्स (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1964 (1965 का 31)—**इस संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के अनुच्छेद** 14, 19 **और** 31 **के अधीन प्रत्याभूत मूल अधिकारों का अतिलंघन नहीं हुआ है क्योंकि बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकलचरल लैण्ड्स ऐक्ट,** 1948 (1948 **का मुम्बई अधिनियम** 47) **तथा उक्त संशोधन अधिनियम को संबिधान के अनुच्छेद** 31-**क का संरक्षण प्राप्त है।**

भारत का संविधान, अनुच्छेद 14, 19 **और** 31—**अनुच्छेद** 31-**क का संरक्षण न केवल ऐसे अधिनियमों को प्राप्त है जो इन अनुच्छेदों की शब्दावली के अन्तर्गत आते हैं वरन् ऐसे संशोधन अधिनियमों को भी प्राप्त है जो मूल अधिनियमों को संशोधत करते हैं, परन्तु संशोधिन ऐसा नहीं होना चाहिए जो मूल अधिनियम को अनुच्छेद** 31-**क की परिधि के बाहर कर देता हो अथवा संशोधन अधिनियम स्वतः ऐसा नहीं होना चाहिए जिसे उक्त अनुच्छेदों का संरणक्ष न मिल सके—और संशोधन अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई हो।**

मुम्बई राज्य के विधानमण्डल ने कृषि भूमियों के भूस्वामियों एवं अभिधारियों के पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार लाने की दृष्टि से बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकलचरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 अधिनियमित किया था। तत्पश्चात् इस अधिनियम को 1951 में संविधान के अनुच्छेद 31-क का संरक्षण प्राप्त हो गया। उक्त अधिनियम को 1956 में संशोधित कर दिया गया। इस संशोधन अधिनियम द्वारा भूस्वामियों और अभिधारियों के पारस्परिक

सम्बन्धों में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिए गए। अभिधारी और भूस्वामी के सम्बन्ध समाप्त हो गए और सम्पृक्त भूमि अभिधारी में निहित हो गई। भूस्वामी और अभिधारी के पारस्परिक सम्बन्ध ऋणदाता और ऋणी के समान हो गए। अभिधारी अपनी सम्पृक्त भूमि का क्रेता हो गया और भूस्वामी उस भूमि की कीमत पाने का हकदार हो गया। भूस्वामी इस रकम की वसूली अभिधारी से विहित रीति में अधिकरण के माध्यम से कर सकता था। यदि अभिधारी स्वेच्छयापूर्वक तथा सम्यक् रूप से कीमत का भुगतान विहित किश्तों में या एक मुश्त रूप में नहीं करता था तो भूस्वामी ऐसी रकम की वसूली राजस्व वसूली अधिनियम के अधीन सम्पृक्त प्राधिकारियों से आवेदन करके भूराजस्व के बकाया के रूप में (धारा 32-ठ) कर सकता था किन्तु आगे चलकर विधिक स्थिति में परिवर्तन करने की आवश्यकता महसूस की गई और परिणामस्वरूप बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1964 अधिनियमित किया गया। इस संशोधन अधिनियम के अधीन धारा 32-ठ लुप्त कर दी गई। 1964 के संशोधन अधिनियम पर पिटीशनरों की आपत्ति यह है कि सम्पृक्त संशोधन अधिनियम पिटीशनर के साम्पत्तिक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है क्योंकि पिटीशनर न तो सम्पृक्त रकम (क्रय-कीमत) न्यायालयों के माध्यम से ही वसूल कर सकते हैं और न उन्हें यह आशा ही है कि ऐसी रकम वे किसी युक्तियुक्त समय के अन्दर आक्षेपित अधिनियम द्वारा विहित प्रक्रिया का अनुसरण करके ही वसूल कर सकते हैं। पिटीशनरों का तर्क यह भी है कि आक्षेपित अधिनियम (1964 का अधिनियम) पिटीशनरों के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों का उल्लंघन करता है और उसे अनुच्छेद 31-क द्वारा संरक्षण प्राप्त नहीं है। उन्होंने यह तर्क भी दिया है कि उक्त संशोधन अधिनियम मूल अधिनियम के मुख्य प्रयोजनों को एवं उसके उद्देश्य को प्रतिकूलतः प्रभावित करता है। प्रत्यर्थियों ने इन सभी दलीलों का प्रति-विरोध किया है। पिटीशन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—1964 का संशोधन अधिनियम अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन प्रत्याभूत मूल अधिकारों का उल्लंघन नहीं करता क्योंकि मूल अधिनियम के साथ-साथ उसके संशोधन अधिनियमों को भी संविधान के अनुच्छेद 31-क का संरक्षण प्राप्त होता है। एक बार जब यह अभिनिर्धारित कर दिया गया कि अनुच्छेद 31-क पिटीशनर को लागू होता है तो पिटीशनर यह शिकायत नहीं कर सकता कि संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन उसके अधिकारों का अतिलंघन हुआ है। यह संरक्षण न केवल ऐसे अधिनियमों को प्राप्त होता है जो उस अनुच्छेद की पदावली के अनुसार उसके अन्तर्गत आते हैं वरन् ऐसे अधिनियमों को भी प्राप्त होता है जो उक्त अधिनियमों को संशोधित करके नई सम्पत्तियां उसके अन्तर्गत करते हैं अथवा अधिनियम की स्कीम के ब्यौरों में परिवर्तन करते हैं। परन्तु यह तब जबकि (1) परिवर्तन ऐसा न हो जो उस मूल अधिनियम को अनुच्छेद 31-क के बाहर कर दे या स्वयं संशोधन अधिनियम ऐसा नहीं है जिसकी संरक्षा अनुच्छेद के अधीन नहीं की जा सकती, और (2) संशोधन अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई है। यदि संशोधन का सम्बन्ध ऐसी कृषि-सुधार सम्बन्धी स्कीम से है जिसके अधीन किसी सम्पदा के या उसमें के किसी अधिकार के अर्जन के लिए उपबन्ध किया गया है अथवा ऐसे अधिकार के निर्वापन या उपान्तरण की बाबत

1971(5) eILR(PAT) SC 44

उपबन्ध किए गए हैं, तो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को भूधृति के अन्तरण मात्र पर या किश्तों में कीमत के संदाय पर या संदाय के लिए कोई आगामी कालावधि नियत करने पर अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन आपत्ति नहीं की जा सकती। आक्षेपित विधान द्वारा केवल उस उपबन्ध को संशोधित किया गया है जो ऐसे अभिधारी से क्रय कीमत की वसूली से सम्बन्धित है परिणामस्वरूप विक्रय के अप्रभावी होने के समय को उस समय तक के लिए स्थगित कर दिया गया है जब तक कि अधिकरण अभिधारी-क्रेता से रकम वसूल करने में असफल नहीं हो जाता। 1956 के संशोधन अधिनियम के अधीन रकम की वसूली पिटीशनर राजस्व वसूली अधिनियम के अधीन कलक्टर से तन्निमित आवेदन करके भूराजस्व की बकाया के रूप में कर सकता था। किन्तु अब वह उपबन्ध लुप्त कर दिया गया है। आक्षेपित अधिनियम द्वारा तत्समय विद्यमान् अभिधारी को केवल यही लाभ दिया गया है कि वह संदाय को मुल्तवी करा सकता है या किश्तों की संख्या में वृद्धि करा सकता है और यह कार्य अधिकरण उसी दशा में करेगा जबकि उसका यह समाधान हो जाए कि सम्पृक्त अभिधारी इस स्थिति में नहीं है कि वह अपेक्षित संदाय कर सके। कलक्टर की बजाय अधिकरण में यह शक्ति निहित की गई है कि वह भू-धारक की ओर से वसूली करे। आक्षेपित अधिनियम के पश्चात् भी मूल स्थिति पूर्वानुसार ही है और संशोधन अधिनियम में ऐसी कोई भी बात नहीं है जो कृषि-सुधार सम्बन्धी स्कीम को, जिसे कि विधानमण्डल कार्यान्वित करना चाहता है और जो संविधान के अनुच्छेद 31-क के अधीन संरक्षित है, नष्ट करता हो। उक्त मत को आक्षेपित अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन से भी समर्थन प्राप्त है (पैरा 11)।

अतः हमारा यह मत है कि आक्षेपित अधिनियम किसी भी रूप में अधिनियम के मुख्य प्रयोजनों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करता अथवा मूल अधिनियम के किसी ऐसे उद्देश्य को भी प्रतिकूलतः प्रभावित नहीं करता जिसे वह अधिनियम प्राप्त करना चाहता है और अधिनियम के उपबन्धों को संविधान के अनुच्छेद 31-क के अधीन जो संरक्षण प्राप्त है वह अधिनियम में किए गए संशोधनों से समाप्त नहीं हो जाता (पैरा 13)।

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1959]	1959 (1) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 489 : **श्रीराम राम नारायण मेधी** बनाम **मुम्बई राज्य** (Sriram Ram Narain Medhi *Vs.* State of Bombay);	9 और 16
[1955]	(1955) 1 एस० सी० आर० 691 : **धीरुब्बा देवीसिंह गोहिल** बनाम **मुम्बई राज्य** (Dhirubba Devisingh Gohil *Vs.* The State of Bombay);	16

प्रभेदित निर्णय

[1966]	2 सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 411 : **महाराणा श्री जयन्तसिंहजी रणमलसिंहजी आदि** बनाम **गुजरात राज्य** (Maharana Shri Jayyantsinghji Ranmalsinghji etc. *Vs.* The State of Gujarat);	14

1971(5) eILR(PAT) SC 44

सिविल आरम्भिक अधिकारिता : 1968 का रिट पिटीशन सं० 254.

(मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन आवेदन)

पिटीशनर की ओर से सर्वश्री वी० एम० तारकुण्डे, वी० एम० लिमय और एस० एस० शुक्ल

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री वी० एस० देसाई, एम० सी० भण्डारी और एस० पी० नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति पी० जगनमोहन रेड्डी ने दिया।

न्यायाधिपति रेड्डी—

पिटीशनर ने बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स (एमेण्डमेंट) ऐक्ट, 1964 (1965 का महाराष्ट्र अधिनियम 31) (जिसे इसमें इसके आगे "आक्षेपित अधिनियम" कहा गया है) की विधिमान्यता पर आपत्ति की है। मूल अधिनियम है बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स ऐक्ट, 1948 (1948 का मुम्बई अधिनियम 47) (जिसे इसमें इसके आगे "मूल अधिनियम" कहा गया है)। 1956 में राज्य विधानमण्डल ने बाम्बे टेनेन्सी एण्ड एग्रीकल्चरल लैण्ड्स (एमेण्डमेंट) ऐक्ट, 1956 (1956 का मुम्बई अधिनियम 13) (जिसे इसमें इसके आगे "संशोधन अधिनियम" कहा गया है) द्वारा मूल अधिनियम संशोधित किया और यह संशोधन 1 अगस्त, 1956 से प्रवृत्त हुआ।

2. मुम्बई राज्य ने यह विधान सामाजिक कल्याण और कृषि सम्बन्धी सुधारों को प्रभावी करने की अपनी नीति को अग्रसर करने के लिए किया है। मुम्बई राज्य विधानमण्डल ने मूल अधिनियम उस विधि को संशोधित करने के लिए पारित किया था जो भू-स्वामियों और कृष्य-भूमियों के अभिधारियों के बीच विद्यमान पारस्परिक सम्बन्धों को शासित करती थी। इसके द्वारा प्राप्त किए जाने वाला ईप्सित उद्देश्य, जो उसकी प्रस्तावना से उपदर्शित होता है यह था कि "भू-धारकों की उपेक्षा के कारण या भू-स्वामियों और अभिधारियों के बीच होने वाले विवादों के कारण सम्पृक्त सम्पदा पर कृषि-कार्य को क्षति पहुंचने के कारण, या वर्तमान में सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को विकसित करने के प्रयोजन के लिए या कृषि-कार्य के लिए भूमि का दक्षतापूर्ण एवं सर्व प्रकारेण प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए, यह समीचीन है कि भू-धारकों द्वारा धृत सम्पदाओं का प्रबन्ध ग्रहण किया जाए और यह कि मुम्बई प्रान्त में कृषकों या कृषिक श्रमिकों या शिल्पियों की या उनके उपभोग में आने वाली ऐसी कृष्य-भूमियों, निवास गृहों, स्थलों और भूमियों के, जो उक्त सम्पदाओं से अनुलग्न हों, अन्तरण पर निर्बन्धन अधिरोपित किए जाएं और कतिपय अन्य प्रयोजनों के लिए उपबन्ध किए जाएं।"

3. संविधान प्रथम संशोधन अधिनियम, 1951 द्वारा मूल अधिनियम को नवीं अनुसूची में सम्मिलित कर दिया गया था और वह संविधान के अनुच्छेद 31-ख की परिधि के अन्तर्गत कर दिया गया था। 1956 में राज्य विधानमण्डल ने, भारत के संविधान के अनुच्छेद 38 और 39 में उपवर्णित राज्य की नीति के निदेशक तत्त्वों को कार्यान्वित करने के लिए

अभिधारियों के कल्याण को प्रोन्नत करने, भूमिहीन कृषकों और श्रमिकों के कल्याण को प्रोन्नत करने और उन्हें भूमि अर्जित करने के लिए समर्थ बनाने और भूमि में स्वामित्व का समान रूप से वितरण उपाप्त करने के लिए, संशोधन अधिनियम पारित किया था जिस पर राष्ट्रपति की सम्मति 16 मार्च, 1956 को प्राप्त हुई थी। इस अधिनियम द्वारा भू-स्वामियों और अभिधारियों के पारस्परिक सम्बन्धों में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर दिए गए। धारा 32 से लेकर धारा 32-ज तक की धाराओं में किए गए संशोधनों का मुख्य प्रभाव यह हुआ कि 1 अप्रैल, 1957 को (जिसे इसमें इसके आगे कृषक-दिवस कहा गया है) हर एक अभिधारी की बाबत यह समझा गया कि उसने, अन्य उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए उक्त दिवस को, कतिपय शर्तों के अध्यधीन रहते हुए (धारा 32 देखिए) अभिधारी के रूप में उसके द्वारा धारित भूमि तत्समय विद्यमान सभी विल्लंगमों (इनकम्ब्रेन्सेज़ नेसेज) से मुक्त अपने भू-स्वामी से क्रय कर ली है। धारा 32-क के अधीन अभिधारी की बाबत यह समझा गया था कि उसने विहित अधिकतम सीमा तक भूमि क्रय कर ली है। धारा 32-ख द्वारा यह भी उपबन्धित किया गया था कि यदि अभिधारी सम्पृक्त भूमि भागतः स्वामी के रूप में और भागतः अभिधारी के रूप में धारण करता है, किन्तु स्वामी के रूप में उसके द्वारा धारित भूमि का क्षेत्रफल उक्त अधिकतम सीमा के बराबर है या उससे अधिक है तो धारा 32 के अधीन अभिधारी के रूप में उसके द्वारा धारित भूमि की बाबत यह न समझा जाएगा कि उसने वह भूमि क्रय कर ली है।

4. धारा 32-ङ में यह उपबन्धित है कि धारा 32 के अधीन अभिधारी द्वारा क्रय कर लेने के पश्चात् शेष बची भूमि धारा 15 में अधिकथित रीति में इस रूप में व्ययनित कर दी जाएगी मानो वह ऐसी भूमि है जिसे अभिधारी ने अभ्यर्पित कर दिया है। धारा 32-च में यह भी उपबंधित है कि निःशक्त भूधारकों की दशा में अर्थात्, अप्राप्तवय, विधवाओं या ऐसे व्यक्तियों की दशा में जो किसी मानसिक या शारीरिक निर्योग्यता के अधीन हैं, या स्वयं अभिधारी ही यथापूर्वोक्त रूप में निर्योग्य हैं या वे सशस्त्र-बल के सदस्य हैं तो कृषक-दिवस उक्त निर्योग्यता के समाप्त हो जाने के एक वर्ष बाद तक के लिए स्थगित कर दिया गया था।

5. इस संशोधन अधिनियम के परिणामस्वरूप 1 अप्रैल, 1957 को भूस्वामी और अभिधारी का पारस्परिक सम्बन्ध समाप्त हो गया और भूधारक भूधृतिधारक नहीं रह गया और भूमि में हक अभिधारियों में निहित हो गया जिस पर आपत्ति कतिपय विनिर्दिष्ट आकस्मिकताओं में ही की जा सकती थी। इस प्रकार भू-स्वामियों और अभिधारियों का पारस्परिक सम्बन्ध ऋणदाता और ऋणी के सम्बन्धों के रूप में परिवर्तित हो गया। तत्समय विद्यमान भूस्वामी संशोधन अधिनियम के उपबन्धों के अधीन नियत कीमत धारा 32-ज के साथ पठित धारा 32-छ के अधीन उपबन्धित रीति में वसूल करने का ही हकदार रह गया। अभिधारी को जो कीमत देनी थी उसकी बाबत अवधारण अधिकरण को कृषक-दिवस के पश्चात् यथाशक्यशीघ्र करना था और यह अवधारण तद्धीन उपबन्धित रीति में इस बात के अध्यधीन रहते हुए किया जाना था कि यह रकम निर्धारण की रकम के बीस गुने से अन्यून और 200 गुने से अनधिक होगी। धारा 32-ञ के अधीन अधिकरण के विनिश्चय के विरुद्ध अपील राज्य सरकार से की जा सकती थी।

6. अधिकरण द्वारा निश्चित कीमत का संदाय अभिधारी धारा 32-ट के अधीन विहित रीति में कर सकता था। यह रकम 12 से अनधिक वार्षिक किश्तों में देय थी। इस पर 4½ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से सादा ब्याज भी दिया जाना था और यह ब्याज अधिकरण द्वारा यथाविहित तारीखों को या उससे पूर्व संदत्त किया जाना था। इस बाबत अधिकरण को यह निदेश देना होता था कि एकमुश्त रूप में जमा की गई रकम या किश्तों के रूप में जमा की गई रकम पूर्ववर्ती भूस्वामी को संदत्त कर दी जाएगी। किन्तु भूस्वामी यह रकम विधि-न्यायालयों के माध्यम से वसूल करने का हकदार नहीं था। यदि अभिधारी स्वेच्छापूर्वक सम्यक् रूप से किश्तों का भुगतान नहीं करता था तो भू-स्वामी ऐसी रकम की वसूली राजस्व वसूली अधिनियम के अधीन सम्पृक्त प्राधिकारियों से आवेदन करके भूराजस्व के बकाया के रूप में (धारा 32-ठ) कर सकता था। आक्षेपित अधिनियम की धारा 32-ड के अधीन धारा 32-ठ लुप्त कर दी गई। कीमत का एकमुश्त या उसकी अन्तिम किश्त का, संदाय कर दिए जाने पर अधिकरणों को उस भूमि की बाबत अभिधारी-क्रेता को विहित प्ररूप में एक प्रमाण-पत्र देना होता था। यह प्रमाण-पत्र ही क्रय का निश्चायक साक्ष्य था। यदि अभिधारी विहित कालावधि के अन्दर एकमुश्त रकम संदत्त नहीं करता अथवा उस पर किसी भी समय चार किश्तें बकाया हो जाएं तो क्रय अप्रभावी हो जाता था और भूमि कलक्टर के व्ययनाधीन कर दी जाती थी और यदि ऐसे अभिधारी ने कीमत के लिए कोई रकम जमा कर दी होती थी तो वह उसे लौटा दी जाती थी। यह महत्वपूर्ण बात है कि धारा 32-त में उपबन्धित है कि यदि अभिधारी क्रय करने के अपने अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है या क्रय कीमत के संदाय में व्यतिक्रम होने के कारण विक्रय अप्रभावी हो जाता है तो अभिधारी को भूमि से बेदखल कर दिया जाएगा और भूमि पूर्ववर्ती भूस्वामी को अभ्यर्पित कर दी जाएगी। धारा 32-ठ और धारा 32-ड में यह उपबन्धित है कि क्रय कीमत ऋणों की तुष्टि में लगाई जाएगी और यदि क्रेता भूमि पर व्यक्तिगत रूप से कृषि कार्य नहीं करता है तो उसके द्वारा क्रय की गई भूमि से उसे बेदखल कर दिया जाएगा।

7. अनुच्छेद 32 के अधीन एक पिटीशन द्वारा उक्त संशोधन अधिनियम पर आपत्ति की गई थी किन्तु इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि वह संविधान के अनुच्छेद 31-क द्वारा संरक्षित है, अतः यह विधिमान्य है। आगे हम उक्त विनिश्चय के प्रति निर्देश करेंगे किन्तु पिटीशनर की आपत्ति उन संशोधनों पर है जो आक्षेपित अधिनियम द्वारा संशोधन अधिनियम के पश्चात् विद्यमान विधि में किए गए हैं। पिटीशनर के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि पिटीशनर के मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले परिवर्तन इस प्रकार हैं :—(1) यह कि यदि अभिधारी किश्तों का भुगतान 12 वर्ष के अन्त तक नहीं कर देता है किन्तु इस कालावधि की समाप्ति से पूर्व वह इस भाव का आवेदन कर देता है कि वह विहित कालावधि के अन्दर बकाया रकम संदत्त करने में असमर्थ है और एक किश्त के साथ में ही एक वर्ष की किश्त की कुल रकम पर ब्याज भी संदत्त कर देता है, तो संदाय की अवधि अन्य 12 वर्ष की कालावधि के लिए वर्धित हो जाती है, (2) जब वह एकमुश्त कीमत देने में असफल होता है या उसे चार किश्तें देनी बकाया रह जाती हैं (उस दशा में जबकि चार या अधिक किश्तें ही देनी नियत की गई हों) और क्रय तद्द्वारा अप्रभावी हो जाता है तो भी यदि 1 मार्च, 1965 को भूमि

पर उसका कब्जा था और उस तारीख से 6 मास के अन्दर या एकमुश्त कीमत के संदाय में अथवा अन्तिम किश्त के संदाय से, इनमें से जो भी बाद में हों व्यतिक्रम करने की तारीख से 6 मास के अन्दर आवेदन फाइल करके इस आधार पर व्यतिक्रम के मोचन के लिए अधिकरण से प्रार्थना करता है कि चूंकि वह कीमत एकमुश्त रूप में या विहित समय के अन्दर किश्तों के रूप में संदत्त करने में असमर्थ था (अतः पर्याप्त कारण मौजूद था) तो अधिकरण, यदि उसका समाधान हो जाए, व्यतिक्रम माफ कर सकता है और अतिरिक्त समय अनुज्ञात कर सकता है। यह अतिरिक्त समय एकमुश्त संदाय की दशा में एक वर्ष हो सकता है और उस दशा में जबकि कीमत का संदाय किश्तों में किया जाना हो तो बकाया कीमत के संदाय के लिए किश्तों की संख्या कुल मिला कर 16 तक की जा सकती है, (3) जबकि बढ़ाई गई कालावधि के दौरान विधि द्वारा यथा अपेक्षित बकाया रकम संदत्त नहीं की जाती है और विक्रय अप्रभावी हो जाता है और अभिधारी-क्रेता उस दशा में भी काबिज बना रहता है तो भू-स्वामी को अभिधारी क्रेता को बेदखल करने का तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक कि अधिकरण यह बात स्वीकार नहीं कर लेता कि वह क्रय-कीमत वसूल करने में असफल हो गया है।

8. श्री तारकुन्डे ने यह दलील दी है कि इन परिवर्तनों द्वारा पिटीशनर के साम्पत्तिक अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है क्योंकि न तो सम्पृक्त रकम वह न्यायालयों के माध्यम से ही वसूल कर सकता हैं और न उसे यह आशा है कि ऐसी रकम वह किसी युक्तियुक्त समय के अन्दर आक्षेपित अधिनियम द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसरण द्वारा वसूल कर सकता है; यह कि पूर्वतन विद्यमान विधि के अधीन जब कीमत के संदाय में अभिधारी-क्रेता द्वारा व्यतिक्रम करने के कारण धारा 32-ज या धारा-32 छ के अधीन विक्रय अप्रभावी हो जाता था तो धारा 32-त के अधीन कलक्टर से यह अपेक्षित था कि वह सम्पृक्त भूमि-स्वामी को दे दे। किन्तु आक्षेपित अधिनियम के अधीन यह अधिकार एक भ्रान्ति हो गया है क्योंकि भू-भूस्वामी के पास ऐसा कोई भी प्रभावशील उपचार नहीं है जिसके द्वारा वह सम्पृक्त रकम वसूल कर सके या भूमि पर कब्जा प्राप्त कर सके और अभिधारी को केवल यही करना होता है कि वह निश्चिन्त होकर बैठा रहे। न तो उसे समय में वृद्धि के लिए ही आवेदन करना है और न उसे किश्त का ही संदाय करना है और साथ ही अधिकरण के लिए भी ऐसा कोई समय नियत नहीं किया गया है जिसके अन्दर वह यह अवधारित कर दे कि वह राजस्व वसूली अधिनियम के अधीन सम्पृक्त रकम वसूल करने में असफल हो गया है। यह कहा गया है कि संदाय करने में असमर्थ व्यक्ति और संदाय न करने वाले व्यक्ति के बीच कोई भेद नहीं किया गया है।

9. इन दलीलों के कारण यह बता देना आवश्यक है कि इसी पिटीशनर ने **श्री राम रामनारायण मेधी** बनाम **मुम्बई राज्य** (1) में इसी संशोधन अधिनियम की असंवैधानिकता पर आपत्ति इस आधार पर की थी कि वह विधानमण्डल के शक्तिबाह्य है; कि सम्पृक्त विधान चूंकि अनुच्छेद 31क द्वारा संरक्षित नहीं है, अतः वह संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 का उल्लंघन करता है; और यह कि यह आभासी विधान

---

(1) 1959 (1) सप्लीमेंट एस० सी० आर० 489.

(कलरेबुल पीस आफ लेजिसलेशन) है जो राज्य द्वारा अपनी विधायी शक्ति के अत्यधिक प्रत्यायोजन द्वारा भागतः प्रदूषित हो गया है। प्रत्यर्थी की ओर से यह तर्क पेश किया गया था कि आक्षेपित विधान संविधान की सप्तम अनुसूची की सूची 2 की मद 18 के अन्तर्गत आता है क्योंकि वह सम्पदा सम्बन्धी अधिकारों को निर्वापित या उपान्तरित करने के लिए उपबंध करता है और इस कारण वह संविधान के अनुच्छेद 31-क द्वारा संरक्षित है और यह कि विधायी शक्ति का अत्यधिक प्रत्यायोजन नहीं हुआ है।

10. इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया—(1) सम्पृक्त विधान सूची 2 की प्रविष्टि 18 के अन्तर्गत आता है और इसलिए विधानमण्डल संशोधन अधिनियम अधिनियमित करने के लिए सक्षम था; (2) कि सम्पदा शब्द बाम्बे लैंड रेवेन्यू कोड की धारा 2(5) द्वारा यथापरिभाषित 'सम्पदा' शब्द भूधारकों को लागू होता है और यह परिभाषा अन्यसंक्रान्त न की गई भूमियों के भूवृतिधारकों और अधिभोगियों को भी समान रूप से लागू होती है; (3) यह कि मूल अधिनियम की धारा 2(9) में यथापरिभाषित "भूधारक" शब्द द्वारा अन्यसंक्रान्त भूमि और अन्यसंक्रान्त न की गई भूमि के बीच कोई अन्तर नहीं किया गया है और उससे यह दर्शित होता है कि भू-धारक का हित बाम्बे लैण्ड रेवेन्यू कोड की धारा 2(5) में अन्तर्विष्ट "स्टेट" (सम्पदा) की परिभाषा के अन्तर्गत आता है; (4) यह कि इस प्रस्थापना के लिए कोई औचित्य नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 31-क(1)(क) द्वारा यथा अनुध्यात सम्पदा में के किन्हीं अधिकारों के निर्वापन या उपान्तरण का यही अर्थ होना चाहिए मानो राज्य ने उस सम्पदा के अर्जन या उस सम्पदा में के किन्हीं अधिकारों के अर्जन के लिए कोई प्रक्रिया की है। इस अनुच्छेद की भाषा स्पष्ट और असंदिग्ध है और उससे यह दर्शित होता है कि उसने दोनों विचारों को सुभिन्न और एक दूसरे से अलग-अलग माना है; और (5) यह कि संशोधन अधिनियम की धारा 32 से लेकर 32-द तक द्वारा यह अनुध्यात है कि भूधृति में हक कृषक-दिवस को निहित हो जाएगा (कतिपय विनिर्दिष्ट आकस्मिकताओं में ही ऐसा न हो पाएगा) और इसके द्वारा आशयित यह है कि संविधान के अनुच्छेद 31-क (1) (क) के अर्थान्तर्गत सम्पदा में अधिकारों का निर्वापन और उपान्तरण हो जाएगा। पूर्वोक्त कारणों से यह अभिनिर्धारित किया गया कि संशोधन अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 का अतिक्रमण करने वाले नहीं हैं।

11. इस विनिश्चय से इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न का समाधान हो जाता है कि क्या पिटीशनर के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन मूल अधिकारों का अतिलंघन हुआ है क्योंकि मूल अधिनियम तथा साथ ही संशोधन अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 31-क द्वारा अब संरक्षित हैं। अब न तो विभेद के प्रश्न पर और न प्रतिकर या उसकी पर्याप्तता के प्रश्न पर ही विचार किया जा सकता है और न उस उपबन्ध की युक्तियुक्तता पर ही आपत्ति की जा सकती है जिसके अधीन भूस्वामियों के हक निर्वापित किए गए हैं और न उस रीति पर ही आपत्ति की जा सकती है जिसके आधार पर कीमत संदत्त की जानी है। एक बार जब यह अभिनिर्धारित कर दिया गया कि अनुच्छेद 31-क पिटीशनर को लागू होता है तो पिटीशनर यह शिकायत नहीं कर सकता कि संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन उसके अधिकारों का अतिलंघन हुआ है। यह संरक्षण न केवल ऐसे ही अधिनियमों को प्राप्त है जो उस अनुच्छेद की शब्दावली के अनुसार उसके अन्तर्गत

आते हैं वरन् ऐसे अधिनियमों को भी प्राप्त होता है जो उक्त अधिनियमों को संशोधित करके नई सम्पत्तियां उसके अन्तर्गत करते हैं अथवा अधिनियम की स्कीम के ब्यौरों में परिवर्तन करते हैं। परन्तु यह तब जब कि (1) परिवर्तन ऐसा नहीं है जो उस अधिनियम को अनुच्छेद 31-क के बाहर कर दे या स्वयं वह ऐसा नहीं है जिसकी संरक्षा उसके अधीन नहीं की जा सकती; और (2) संशोधन अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई है। दूसरे शब्दों में यही बात इस प्रकार कही जा सकती है कि यदि संशोधन का सम्बन्ध कृषि-सुधार सम्बन्धी ऐसी स्कीम से है जिसके अधीन किसी सम्पदा के या उसमें के किसी अधिकार के अर्जन के लिए उपबन्ध किया गया है अथवा ऐसे अधिकार के निर्वापन या उपान्तरण की बाबत उपबन्ध किए गए हैं, तो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को भू-धृति के अन्तरण मात्र पर या किश्तों में कीमत के संदाय या संदाय के लिए कोई आगामी कालावधि नियत करने पर अनुच्छेद 14, 19 और 31 के अधीन आपत्ति नहीं की जा सकती। इस मामले में हमने यह देखा है कि आक्षेपित विधान द्वारा केवल उस उपबन्ध को संशोधित किया गया है जो ऐसे अभिधारी से रकमों की वसूली से सम्बन्धित है, जो सम्पृक्त भूमि का क्रेता हो गया है, और जो विक्रय की अवधि के अप्रभावी होने के समय को उस समय तक से लिए स्थगित कर देता है जब तक कि अधिकरण अभिधारी-क्रेता से रकम वसूल करने में असफल नहीं हो जाता। संशोधन अधिनियम के अधीन रकम की वसूली पिटीशनर केवल इसी प्रकार कर सकता था कि वह राजस्व वसूली अधिनियम (रेवेन्यू रिकवरी ऐक्ट) के अधीन कलक्टर से यह आवेदन करे कि कलक्टर उस रकम को भू-राजस्व की बकाया के रूप में वसूल करे। किन्तु वह उपबन्ध धारा 32-ठ के अधीन अब लुप्त कर दिया गया है। क्योंकि तत्समय विद्यमान अभिधारी में भू-धृति में हक के विनिहित किए जाने के बारे में आपत्ति केवल विनिर्दिष्ट आकस्मिकताओं में ही की जा सकती है (जिस प्रकार कि आक्षेपित अधिनियम के पूर्व की जा सकती थी), अतः संशोधन अधिनियम द्वारा पूर्वतन विद्यमान उपबन्धों को केवल इसी विस्तार तक उपान्तरित किया गया है कि तत्समय विद्यमान अभिधारी को यह लाभ दिया गया है कि वह संदाय को मुल्तवी करा सकता है या किश्तों की संख्या में वृद्धि करा सकता है और यह कार्य वह अधिकरण से यह अपेक्षा करके करा सकता है कि अधिकरण इस बाबत जांच करे कि अभिधारी-क्रेता के पास संदाय न करने के लिए पर्याप्त कारण हैं या नहीं और यदि अधिकरण का संदाय में विलम्ब माफ करने के लिए समाधान हो जाता है तो वह संदाय की कालावधि में वृद्धि कर सकता है। कलक्टर की बजाय अधिकरण में यह शक्ति निहित कर दी गई है कि वह भू-धारक की ओर से वसूली करे। इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि आक्षेपित अधिनियम के अधीन विक्रय उसी दशा में अप्रभावी होता है (जैसा कि संशोधन अधिनियम के अधीन होता था) जब कि रकम की वसूली नहीं हो पाती है, अन्तर केवल यह है कि पूर्वकथित विधि (आक्षेपित अधिनियम) के अधीन यह दर्शित करना होता है कि अभिधारी-क्रेता संदाय करने की स्थिति में नहीं है। निस्सन्देह ही आक्षेपित अधिनियम से पूर्व यदि अभिधारी-क्रेता संदाय नहीं करता था तो कलक्टर राजस्व वसूली अधिनियम के अधीन सम्पृक्त रकम की वसूली के लिए कार्यवाही कर सकता था और यदि वह वसूली नहीं कर पाता था तो विक्रय अप्रभावी हो जाता था और भूस्वामी को, अभिधारी-क्रेता को बेदखल करके, कब्जा दे दिया जाता था परन्तु यह तब जब कि

1971(5) eILR(PAT) SC 44

भूस्वामी अधिनियम के अधीन उस सम्पत्ति का कब्जा पाने का हकदार हो अर्थात्, उस दशा में जब कि उसकी जोत विहित अधिकतम सीमा से अधिक न हो। आक्षेपित अधिनियम के पश्चात् भी मूल स्थिति पूर्वानुसार ही है और संशोधन अधिनियम में ऐसी कोई भी बात नहीं है जो कृषि-सुधार सम्बन्धी स्कीम को, जिसे कि विधानमण्डल कार्यान्वित करना चाहता है और जो संविधान के अनुच्छेद 31-क के अधीन संरक्षित है, नष्ट करती हो।

12. हमारा उपरोक्त मत उद्देश्यों और कारणों के कथन से भी समर्थित है। उद्देश्यों और कारणों में विधानमण्डल ने उस कठिनाई का उल्लेख किया है जिसका सामना उसे कृषि सम्बन्धी सुधारों के कार्यान्वियन में करना पड़ा है और यह भी उपदर्शित किया गया है कि इन कठिनाइयों से कैसे उसने पेश पाया है। सम्पृक्त कथन इस प्रकार है—

> "बोम्बे टेनेन्सी एग्रीकलचुरल लैंड ऐक्ट, 1948 की धारा 32-के, 32-एल और 32-एम के उपबन्धों के अनुसार यह बात अभिधारी पर छोड़ दी गई है कि वह अधिकरण के पास उस भूमि की कीमत जमा कर दे जो उस अधिनियम की धारा 32 के अधीन उसने क्रय की है। यदि वह ऐसी कीमत एकमुश्त रूप में या किश्तों में जमा नहीं करा देता है तो विक्रय अप्रभावी हो जाता है और धारा 32-पी के अधीन अभिधारी संक्षिप्ततः भूमि से बेदखल किया जा सकता है। सरकार की जानकारी में यह बात लायी गई है कि इस अधिनियम के अधीन वाले बहुत से मामलों में अभिधारी, जो विशिष्टतः अनुसूचित जाति या अनुसूचित जन-जाति के होते हैं, कीमत सम्यक् तारीखों में जमा नहीं करा पाते हैं और जिसके कारण विक्रय अप्रभावी होने का खतरा बना रहता है। यह देखा गया है कि ये अभिधारी निरक्षर हैं और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं अथवा अपनी अज्ञानतावश न कि जानबूझकर, यह रकम जमा नहीं करा पाते हैं। अतः जब तक कि किसी सरकारी अधिकरण के माध्यम से विक्रय कीमत की वसूली के लिए उपबन्ध नहीं किया जाता तब तक यह सम्भव है ही कि विक्रयों के अप्रभावी हो जाने के कारण बहुत से अभिधारियों को अपनी भूमियों से बेदखल कर दिया जाए। यह बात भूधृति सम्बन्धी विधान के उद्देश्यों को निष्फल कर सकती है। ऐसी निष्फलता से बचने के लिए यह सोचा गया कि कृषि-भूमि अधिकरण को यह शक्ति दी जाए कि वह अभिधारियों से क्रय कीमत की वसूली भूराजस्व की बकाया के रूप में करे और जब तक कि क्रय कीमत वसूल करने में अधिकरण असफल नहीं हो जाता तब तक विक्रय अप्रभावी नहीं होना चाहिए। यह भी विचारा गया कि इन उपबन्धों का लाभ ऐसे अभिधारियों को दिया जाना चाहिए जिनका कि क्रय पहले ही अप्रभावी हो चुका है किन्तु जिन्हें अब तक धारा 32-पी के अधीन उनकी भूमियों से बेदखल नहीं किया गया है। यह विधेयक इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लाया गया है।"

13. अतः हम यह नहीं समझते कि आक्षेपित अधिनियम किसी भी रूप में अधिनियम के मुख्य प्रयोजनों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है, अथवा उसके किसी ऐसे उद्देश्य को प्रतिकूलतः प्रभावित करता है जिसे वह अधिनियम प्राप्त करना चाहता है और अधिनियम के उपबन्धों को संविधान के अनुच्छेद 31-क के अधीन जो संरक्षण प्राप्त है वह अधिनियम में किए गए संशोधनों से समाप्त नहीं हुआ है।

14. श्री तारकुण्डे ने हमारा ध्यान **महाराणा श्री जयन्तसिंह जी रणमल सिंहजी आदि बनाम गुजरात राज्य** (1) की ओर आकर्षित करते हुए अपनी इस दलील का समर्थन किया है कि आक्षेपित अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) का उल्लंघन करता है और यह अधिनियम उक्त अनुच्छेद के खण्ड (5) द्वारा संरक्षित नहीं है क्योंकि उक्त अधिनियम के उपबन्ध इस दृष्टि से अयुक्तियुक्त हैं कि क्रय कीमत की वसूली की तारीख को अनिश्चित कालावधि तक मुल्तवी करने से क्रय-कीमत का संदाय निर्वापित हो जाता है और विक्रय के अप्रभावी हो जाने के पश्चात् भी भू-स्वामी भूमि वापस पाने का हकदार नहीं रहता है।

15. ऊपर निर्दिष्ट मामले में विचाराधीन प्रश्न यह था कि क्या बौम्बे लैण्ड टेन्योर अबोलिशन लाज़ (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1958 के उपबन्धों के परिणामस्वरूप (विशिष्टत: उक्त अधिनियम की धारा 4 के अधीन) कतिपय अस्थायी अभिधारियों को बौम्बे ताल्लुकेदारी टेन्योर अबोलिशन ऐक्ट, 1949 के प्रवर्तन की तारीख से स्थायी अभिधारी बना दिया गया है और तद्द्वारा वे निर्धारण से छ: गुनी रकम का संदाय करके अथवा भाटक की छ: गुनी रकम का संदाय करके (न कि उस रकम का संदाय करके जो निर्धारण से बीस गुनी से लेकर दो सौ गुनी तक की हो) भूधृति अर्जित करने के हकदार हो गए हैं। यह बात भू-स्वामी के सम्पत्ति अर्जित करने, धारण करने और व्ययनित करने के मूल अधिकार का अतिक्रमण करती है। यह दलील दी गई कि इस परिणाम से पिटीशनर उस अधिकार से सारत: वंचित हो जाते हैं जो उन्होंने समय-समय पर यथासंशोधित रूप में मूल अधिनियम की धारा 32 में अन्तर्विष्ट उपबन्धों और अन्य उपबन्धों के कारण कृषक-दिवस को अर्जित किया है। न्यायाधीशों ने बहुमत से यह अधिनिर्धारित किया कि बौम्बे लैण्ड टेन्योर अबोलिशन लाज़ (अमेण्डमेण्ट) ऐक्ट, 1958 की धारा 3, 4 और 6 के उपबन्ध, जहां तक कि उनके अधीन कुछ अभिधारियों को ऐसे स्थायी अभिधारी माना गया है जिनके कब्जे में ताल्लुकेदारी भूमि है, असांविधानिक हैं और शून्य हैं क्योंकि उन उपबन्धों के अधीन स्थायी अभिधारी की परिभाषा में परिवर्तन करने और साक्ष्य-नियम परिवर्तित करने के बहाने उसने वस्तुत: वह क्रय कीमत कम कर दी है जिसे कि पिटीशनर अपने अभिधारियों से पाने के हकदार मूल अधिनियम की धारा 32-एच के अधीन 'कृषक-दिवस' को थे।

16. अपनी ओर से और मुख्य न्यायाधिपति सिन्हा की ओर से न्यायाधिपति एस० के० दास द्वारा सुनाये गए निर्णय से यह प्रकट होता है कि उनके समक्ष ताल्लुकेदारी अबोलिशन ऐक्ट, 1949 और संशोधन अधिनियम के साथ पठित मूल अधिनियम के सुसंगत उपबन्धों की सांविधानिक विधिमान्यता पर आपत्ति नहीं की गई थी। इन दो अधिनियमों के सुसंगत उपबन्धों की सांविधानिकता की पुष्टि के सम्बन्ध में **धीरुब्बा देवीसिंह गोहिल** बनाम **मुम्बई राज्य** (2) और **श्रीराम रामनारायण मेधी** बनाम **मुम्बई राज्य** (3) में दिए गए विनिश्चय उद्धृत किए गए हैं। न्यायालय ने यह बताने के पश्चात् कि उक्त मामले में उनके

(1) (1966) 2 सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 411.

(2) (1955) 1 एस० सी० आर० 691.

(3) (1959) (1) सप्लीमेण्ट एस० सी० आर० 489.

समक्ष 1958 के मुम्बई अधिनियम, 1957 की (विशिष्टतः उस अधिनियम के धारा 3 4 और 6 की) सांविधानिक विधिमान्यता पर आपत्ति की गई थी, और पूर्वतर इस विनिश्चय के प्रति निर्देश करते हुए कि इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संशोधन अधिनियम के साथ पठित मूल अधिनियम की धारा 32 से लेकर 32-आर का उद्देश्य संविधान के अनुच्छेद 31-क (1) (क) के अर्थान्तर्गत सम्पदा में भूस्वामियों के अधिकारों का निर्वापन या किसी रूप में उनका उपान्तरण है, यह मत व्यक्त किया है कि क्रय-कीमत प्राप्त करने का पिटीशनरों का अधिकार निस्संदेह ही संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (च) के अधीन प्रत्याभूत सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार है और वह उपबन्ध उक्त अनुच्छेद के खण्ड (5) द्वारा संरक्षित नहीं है और न उससे पूर्व वाले मामले में ही अनुच्छेद 31-क द्वारा संरक्षित हैं। न्यायाधिपति एस० के० दास ने पूर्वोक्त निष्कर्ष के लिए पृष्ठ 438 और 439 पर निम्नलिखित कारण उल्लिखित किए हैं—

> "पिटीशनरों के अभिधारी तीन प्रकार के हैं—स्थायी अभिधारी, संरक्षित अभिधारी और साधारण अभिधारी। 1 अप्रैल, 1957 को पिटीशनर स्थायी अभिधारियों को छोड़ कर अन्य सभी अभिधारियों के सम्बन्ध में भूधृतिधारक नहीं रह गये और वे धारा 32-एच के अधीन क्रय-कीमत प्राप्त करने के ही हकदार रह गए। यदि उस तारीख को कोई अभिधारी यह दावा करता है कि वह स्थायी अभिधारी है तो उसे यह बात राजस्व संहिता (रेवेन्यू कोड) की धारा 83 के अनुसार साबित करनी होती थी। भूधृतिधारक ऐसे दावे का प्रतिविरोध उस दशा में कर सकता था जबकि ऐसा दावा अभिधारी ने किया हो। किन्तु 1958 वाले आक्षेपित अधिनियम द्वारा ये सभी उपबन्ध परिवर्तित कर दिए गए हैं और जब तक कि आक्षेपित अधिनियम (1958) के प्रारम्भ से छः मास के भीतर भूधृतिधारक आवेदन नहीं कर देता तब तक वह यह कहने की स्थिति में नहीं होता है कि अमुक अभिधारी, जिसका 15 अगस्त, 1950 को और उससे पूर्व कुल मिलाकर बारह वर्ष की लगातार कालावधि तक भूधृति पर कब्जा रहा है, स्थायी अभिधारी नहीं है। हम यह अभिनिर्धारित नहीं कर सकते कि आक्षेपित अधिनियम (1958) की धारा 5 द्वारा अधिरोपित छः मास की अवधि वर्तमान परिस्थितियों में संविधान के अनुच्छेद 19 (5) के अर्थान्तर्गत युक्तियुक्त निर्बन्धन है।"

17. यह स्पष्ट है कि उपरोक्त मामले में दिया गया विनिश्चय, हमारे सामने प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को, लागू नहीं होता और परिणामस्वरूप जो दृष्टिकोण हमने अपनाया है उसके अनुसार यह पिटीशन खर्चे सहित खारिज किया जाता है।

पिटीशन खारिज कर दिया गया।

रा०/वि०